९३वें सूत्रमें 'संजद' पदका सद्भाव

सूत्रमें 'संजद' पद नहीं है : पूर्व पक्षकी युक्तियाँ

'षट्खण्डागम' के उल्लिखित ९३वें सूत्रमें 'संसद' पद है या नहीं ? इस विषयको लेकर काफी अरसे से चर्चा चल रही है। कुछ विद्वान् उक्त सूत्रमें 'संजद' पदकी अस्थिति बतलाते हैं और उसके समर्थनमें कहते हैं कि प्रथम तो यहाँ द्रव्यका प्रकरण है, अतएव वहाँ द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका ही निरूपण है। दूसरे, षट्खण्डागममें और कहीं आगे-पीछे द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका कथन उपलब्ध नहीं होता। तीसरे, वहाँ सूत्रमें 'पर्याप्त' शब्दका प्रयोग है जो द्रव्यस्त्रीका ही बोधक है। चौथे वीरसेन स्वामीकी टीका उक्तसूत्रमें 'संजद' पदका समर्थन नहीं करती, अन्यथा टीकामें उक्त पदका उल्लेख अवश्य होता। पाँचवें, यदि प्रस्तुत सूत्रको द्रव्यस्त्रीके गुणस्थानोंका प्ररूपक—विधायक न माना जाय और चूँकि षट्खण्डागममें ऐसा और कोई स्वतन्त्र सूत्र है नहीं, जो द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका विधान करता हो, तो दिगम्बर परम्पराके इस प्राचीनतम सिद्धान्तग्रन्थ षट्खण्डागमसे द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थान सिद्ध नहीं हो सकेंगे और जो प्रो० हीरालालजी कह रहे हैं उसका तथा श्वेताम्बर मान्यताका अनुषंग आवेगा। अतः प्रस्तुत ९३वें सूत्रको 'संजद' पदसे रहित मानना चाहिये और उसे द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका विधायक समझना चाहिये।

उक्त युक्तियोंपर विचार

१. षट्खण्डागमके इस प्रकरणको जब हम ग़ौरसे देखते हैं तो वह द्रव्यका प्रकरण प्रतीत नहीं होता मूलग्रन्थ और उसकी टीकामें ऐसा कोई उल्लेख अथवा संकेत उपलब्ध नहीं है जो वहाँ द्रव्यका प्रकरण सूचित करता हो। विद्वद्वर्य पं० मक्खनलालजी शास्त्रीने हालमें 'जैन बोधक' वर्ष ६२, अंक १७ और १९में अपने दो लेखों द्वारा द्रव्यका प्रकरण सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। उन्होंने मनुष्यगति सम्बन्धी उन पाँचों ही ८९, ९०, ९१, ९२, ९३—सूत्रोंको द्रव्य प्ररूपक बतलाया है। परन्तु हमें ऐसा जरा भी कोई स्रोत नहीं मिलता, जिससे उसे 'द्रव्यका ही प्रकरण' समझा जा सके। हम उन पाँचों सूत्रोंको उत्थानिका वाक्य सहित नीचे देते हैं :—

"मनुष्यगतिप्रतिपादनार्थमाह—

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि–सासणसम्माइट्ठि–असंजद–सम्माइट्ठि–ट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥८९॥

तत्र शेषगुणस्थानसत्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह—

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद–संजद–ट्ठाणे णियमा पज्जता ॥९०॥

मनुष्यविशेषस्य निरूपणार्थमाह—

एवं मणुस्सपज्जत्ता ॥९१॥

मानुषीषु निरूपणार्थमाह—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि–सासणसम्माइट्ठि–ट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रैव शेषगुणविषयाऽऽरेकापोहनार्थमाह—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ ॥९३॥

—धवला १, १, ८९-९३ पृ० ३२९-३३२

ऊपर उद्धृत हुए मूलसूत्रों और उनके उत्थानिकावाक्योंसे यह जाना जाता है कि पहला (८९) और दूसरा (९०) ये दो सूत्र तो सामान्यतः मनुष्यगति-पर्याप्तकादिक भेदसे रहित (अविशेषरूपसे) सामान्य मनुष्यके प्रतिपादक हैं और प्रधानताको लिए हुए वर्णन करते हैं। आचार्य वीरसेन स्वामी भी यही स्वीकार करते हैं और इसलिये वे 'मनुष्यगति प्रतिपादनार्थमाह' (८९) तथा 'तत्र (मनुष्यगतौ) शेषगुणस्थान-सत्त्वावस्थाप्रतिपादनार्थमाह' (९०)। इस प्रकार सामान्यतया ही इन सूत्रोंके मनुष्यगति सम्बन्धी उत्थानिका वाक्य रचते हैं। इसके अतिरिक्त अगले सूत्रोंके उत्थानिकावाक्योंमें वे 'मनुष्यविशेष' पदका प्रयोग करते हैं, जो खास तौरसे ध्यान देने योग्य है और जिससे विदित हो जाता है कि पहले दो सूत्र तो सामान्य-मनुष्यके प्ररूपक हैं और उनसे अगले तीनों सूत्र मनुष्यविशेषके प्ररूपक हैं। अतएव ये दो (८९, ९०) सूत्र सामान्यतया मनुष्य गतिके ही प्रतिपादक हैं, यह निर्विवाद है और यह कहनेकी जरूरत नहीं कि सामान्य कथन भी इष्टविशेषमें निहित होता है—सामान्यके सभी विशेषोंमें या जिस किसी विशेषमें नहीं। तात्पर्य यह कि उक्त सूत्रोंका निरूपण सम्भवताकी प्रधानताको लेकर है।

तीसरा (९१), चौथा (९२) और पांचवां (९३) ये तीन सूत्र अवश्य मनुष्यविशेषके निरूपक हैं—मनुष्योंके चार भेदों (सामान्यमनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और अपर्याप्त मनुष्य) मेंसे दो भेदों—मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी-के निरूपक हैं। और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि वीरसेन स्वामीके 'मनुष्य विशेषस्य निरूपणार्थमाह', 'मानुषीषु निरूपणार्थमाह' और 'तत्रैव (मानुषीष्वेव) शेषगुणविषयाऽऽरेकापोहनार्थमाह' इन उत्थानिकावाक्योंसे भी प्रकट है। पर द्रव्य और भावका भेद यहाँ भी नहीं है—द्रव्य और भाव का भेद किये बिना ही मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यणीका निरूपण है। यदि उक्त सूत्रों या उत्थानिकावाक्यों-में 'द्रव्यपर्याप्तमनुष्य' और 'द्रव्यमनुष्यणी' जैसा पद प्रयोग होता अथवा टीकामें ही वैसा कुछ कथन होता, तो निश्चय ही 'द्रव्यप्रकरण' स्वीकार कर लिया जाता। परन्तु हम देखते हैं कि वहाँ वैसा कुछ नहीं है। अतः यह मानना होगा कि उक्त सूत्रोंमें द्रव्यप्रकरण इष्ट नहीं है और इसलिए ९३वें सूत्रमें द्रव्यस्त्रियोंके ५ गुणस्थानोंका वहाँ विधान नहीं है, बल्कि सामान्यतः निरूपण है और पारिशेष्यन्यायसे भावापेक्षया निरूपण वहाँ सूत्रकार और टीकाकार दोनोंको इष्ट है और इसलिए भावलिङ्गको लेकर मनुष्यनियोंमें १४ गुणस्थानों-का विवेचन समझना चाहिये। अतएव ९३वें सूत्रमें 'संजद' पदका प्रयोग न तो विरुद्ध है और न अनुचित है। सूत्रकार और टीकाकारकी प्ररूपणशैली उसके अस्तित्वको स्वीकार करती है।

यहां हम यह आवश्यक समझते हैं कि पं० मक्खनलाल जी शास्त्रीने जो यहाँ द्रव्यप्रकरण होनेपर जोर दिया है और उसके न माननेमें जो कुछ आक्षेप एवं आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं उनपर भी विचार कर लिया जाय। अतः नीचे 'आक्षेप-परिहार' उपशीर्षकके साथ विचार किया जाता है।

आक्षेप-परिहार

(१) आक्षेप-यदि ९२वाँ सूत्र भावस्त्रीका विधायक माना जाय—द्रव्यस्त्रीका नहीं, तो पहला, दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान होना आवश्यक है क्योंकि भावस्त्री माननेपर द्रव्यमनुष्य मानना होगा। और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यमनुष्यके चौथा गुणस्थान भी अपर्याप्त अवस्थामें हो सकता है। परन्तु इस सूत्रमें चौथा गुणस्थान नहीं बताया है, केवल दो ही (पहला और दूसरा) गुणस्थान बताये गये हैं। इससे बहुत स्पष्ट हो जाता है कि यह ९२वाँ सूत्र द्रव्यस्त्रीका ही निरूपक है ?

(१) परिहार—पं० जीकी मान्यता ऐसी प्रतीत होती है कि भावस्त्रीविशिष्ट द्रव्यमनुष्यके अपर्याप्त अवस्थामें चौथा गुणस्थान होता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव मरकर भावस्त्रीविशिष्ट द्रव्यमनुष्य हो सकता है और इसलिए ९३वें सूत्रकी तरह ९२वें सूत्रको भावस्त्रीका निरूपण करनेवाला माननेपर सूत्रमें पहला, दूसरा और चौथा इन तीन गुणस्थानोंको बताना चाहिये था। केवल पहले व दूसरे इन दो ही गुणस्थानोंको नहीं ? इसका उत्तर यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव, जो द्रव्य और भाव दोनोंसे मनुष्य होगा उसमें पैदा होता है—भावसे स्त्री और द्रव्यसे मनुष्यमें नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव समस्त प्रकारकी स्त्रियोंमें पैदा नहीं होता। जैसा पण्डितजीने समझा है, अधिकांश लोग भी यही समझते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यस्त्रियों—देव, तिर्यञ्च और मनुष्य द्रव्यस्त्रियोंमें ही पैदा नहीं होता, भावस्त्रियोंमें तो पैदा हो सकता है। लेकिन यह बात नहीं है, वह न द्रव्यस्त्रियोंमें पैदा होता है और न भावस्त्रियोंमें। सम्यग्दृष्टिको समस्त प्रकारकी स्त्रियोंमें पैदा न होनेका ही प्रतिपादन शास्त्रोंमें है। स्वामी समन्तभद्रने 'सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकनपुंसकस्त्रीत्वानि' रत्नकरण्डश्रावकाचारके इस श्लोकमें 'स्त्रीत्व' सामान्य (जाति) पदका प्रयोग किया है, जिसके द्वारा उन्होंने यावत् स्त्रियों (स्त्रीत्वावच्छिन्न द्रव्य और भावस्त्रियों)में पैदा न होनेका स्पष्ट उल्लेख किया है। पण्डितवर दौलतरामजीने 'प्रथम नरक विन षट्भ् ज्योतिष वान भवन सब नारी' इस पद्यमें 'सब' शब्द दिया है जो समस्त प्रकारकी स्त्रियोंका बोधक है। यह पद्य भी जिस पंचसंग्रहादिगत प्राचीन गाथाका भावानुवाद है उस गाथामें भी '**सव्व-इत्थीसु**' पाठ दिया हुआ है। इसके अलावा, स्वामी वीरसेनने षट्खण्डागमके सूत्र ८८की टीकामें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्तिको लेकर एक महत्त्वपूर्ण शंका और समाधान प्रस्तुत किया है, जो खास ध्यान देने योग्य है और जो निम्नप्रकार है—

"बद्धायुष्कः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्नारकेषु नपुंसकवेद इवात्र स्त्रीवेदे किन्नोत्पद्यते इति चेत्, न, तत्र तस्यैवैकस्य सत्त्वात्। यत्र क्वचन समुत्पद्यमानः सम्यग्दृष्टिस्तत्र विशिष्टवेदादिषु समुत्पद्यते इति गृह्यताम्।"

शंका—आयुका जिसने बन्ध कर लिया है ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जिसप्रकार नारकियोंमें नपुंसक वेदमें उत्पन्न होता है उसीप्रकार यहाँ तिर्यंचोंमें स्त्रीवेदमें क्यों नहीं उत्पन्न होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमें वही एक नपुंसकवेद होता है, अन्य नहीं, अतएव अगत्या उसीमें पैदा होना पड़ता है। यदि वहाँ नपुंसकवेदसे विशिष्ट—ऊँचा (बढ़कर) कोई दूसरा वेद होता तो उसीमें वह पैदा होता, लेकिन वहाँ नपुंसक वेदको छोड़कर अन्य कोई विशिष्ट वेद नहीं है। अतएव विवश उसीमें उत्पन्न होता है। परन्तु तिर्यञ्चोंमें तो स्त्रीवेदसे विशिष्ट—ऊँचा दूसरा वेद पुरुषवेद है, अतएव बद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि पुरुषवेदी तिर्यञ्चोंमें ही उत्पन्न होता है। यह आम नियम है कि सम्यग्दृष्टि जहाँ कहीं (जिस किसी गतिमें) पैदा होता है वहाँ विशिष्ट (सर्वोच्च) वेदादिकोंमें ही पैदा होता है—उससे जघन्यमें नहीं।

वीरसेन स्वामीके इस महत्वपूर्ण समाधानसे प्रकट है कि मनुष्यगतिमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टि-जीव द्रव्य और भाव दोनोंसे विशिष्ट पुरुषवेदमें ही उत्पन्न होगा—भावसे स्त्रीवेद और द्रव्यसे पुरुषवेदमें नहीं, क्योंकि जो द्रव्य और भाव दोनोंसे पुरुषवेदी है उसकी अपेक्षा जो भावसे स्त्रीवेदी और द्रव्यसे पुरुषवेदी है वह हीन एवं जघन्य है—विशिष्ट (सर्वोच्च) वेदवाला नहीं है। द्रव्य और भाव दोनोंसे जो पुरुषवेदी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही वहाँ विशिष्ट (सर्वोच्च) वेदवाला है। अतएव सम्यग्दृष्टि भावस्त्रीविशिष्ट द्रव्यमनुष्य नहीं हो सकता है और इसलिए उसके अपर्याप्त अवस्थामें चौथे गुणस्थानकी कदापि सम्भावना नहीं है। यही कारण है कि कर्मसिद्धान्तके प्रतिपादक ग्रन्थोंमें अपर्याप्त अवस्थामें अर्थात् विग्रहगतिमें चातुर्थ गुणस्थानमें स्त्रीवेदका उदय नहीं बतलाया गया है। सासादन गुणस्थानमें ही उसकी व्युच्छित्ति बतला दी गई है, (कर्मकाण्ड गा० ३१२-३१३-३१९)। तात्पर्य यह कि अपर्याप्त अवस्थामें द्रव्यस्त्रीकी तरह भावस्त्रीके भी चौथा गुणस्थान नहीं होता है। इसीसे सूत्रकारने द्रव्य और भाव दोनों तरहकी मनुष्यनियोंके अपर्याप्त अवस्थामें पहला, दूसरा ये दो ही गुणस्थान बतलाये हैं उनमें चौथा गुणस्थान बतलाना सिद्धान्तविरुद्ध होनेके कारण उन्हें इष्ट नहीं था। अतः ९२वें सूत्रकी वर्तमान स्थितिमें कोई भी आपत्ति नहीं है। पण्डितजीने अपनी उपर्युक्त मान्यताको जैनबोधकके ९१वें अंकमें भी दुहराते हुए लिखा है--"यदि यह ९२वाँ सूत्र भावस्त्रीका विधायक होता तो अपर्याप्त अवस्थामें भी तीन गुणस्थान होने चाहिये, क्योंकि भावस्त्री (द्रव्यमनुष्य)के असंयत सम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान भी होता है।" परन्तु उपरोक्त विवेचनसे प्रकट है कि पण्डितजीकी यह मान्यता आपत्ति एवं भ्रमपूर्ण है। द्रव्यस्त्रीकी तरह भावस्त्रीके भी अपर्याप्त अवस्थामें चौथा गुणस्थान नहीं होता, यह ऊपर बतला दिया गया है। और गोम्मटसार जीवकाण्डकी निम्न गाथासे भी स्पष्टतः प्रकट है--

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसि-वण-भवण-सव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥--गा० १२७।

अर्थात् 'द्वितीयादिक छह नरक, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देव तथा सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनकी अपर्याप्त अवस्थामें सम्यक्त्व नहीं होता। भावार्थ--सम्यक्त्व सहित जीव मरण करके द्वितीयादिक छह नरक, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवों और समग्र स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता।' आपने 'भावस्त्रीके असंयत सम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान भी होता है और हो सकता है।' इस अनिश्चित बातको सिद्ध करनेके लिए कोई भी आगमप्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। यदि हो, तो बतलाना चाहिये, परन्तु अपर्याप्त अवस्थामें भावस्त्रीके चौथा गुणस्थान बतलानेवाला कोई भी आगमप्रमाण उपलब्ध नहीं हो सकता, यह निश्चित है।

(२) आक्षेप--जब ९२वाँ सूत्र द्रव्यस्त्रीके गुणस्थानोंका निरूपक है तब उससे आगेका ९३वां सूत्र भी द्रव्यस्त्रीका निरूपक है। पहला ९२वां सूत्र उसकी अपर्याप्त अवस्थाका निरूपक है, दूसरा ९३वां पर्याप्त अवस्थाका निरूपक है, इतना ही भेद है। बाकी दोनों सूत्र द्रव्यस्त्रीके विधायक हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि अपर्याप्त अवस्थाका विधायक ९२वां सूत्र तो द्रव्यस्त्रीका विधायक हो और उससे लगा हुआ ९३वां सुत्र पर्याप्त अवस्थाका भावस्त्रीका मान लिया जाय ?

(२) परिहार--ऊपर बतलाया जा चुका है कि ९२वां सूत्र 'पारिशेष्य' न्यायसे स्त्रीवेदी भावस्त्रीकी अपेक्षासे है और ९३वां सूत्र भावस्त्रीकी अपेक्षासे है ही। अतएव उक्त आक्षेप पैदा नहीं हो सकता है।

(३) आक्षेप--जैसे ९३वें सूत्रको भावस्त्रीका विधायक मानकर उसमें 'संजद' पद जोड़ते हो, उसी प्रकार ९२वें सूत्रमें भी भावस्त्रीका प्रकरण मानकर उसमें भी असंयत (असंजद-ट्ठाणे) यह पद जोड़ना पड़ेगा। विना उसके जोड़े भावस्त्रीका प्रकरण सिद्ध नहीं हो सकता ?

(३) परिहार--यह आक्षेप सर्वथा असंगत है। हम ऊपर कह आये हैं कि सम्यग्दृष्टि भावस्त्रियोंमें भी पैदा नहीं होता, तब वहाँ सूत्रमें 'असंजद-ट्ठाणे' पदके जोड़ने व होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्रीवेद-कर्मको लेकर वर्णन होनेसे भावस्त्रीका प्रकरण तो सुतरां सिद्ध हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) आक्षेप—यदि ८९, ९०, ९१ सूत्रोंको भाववेदी पुरुषके मानोगे तो वैसी अवस्थामें ८९ वें सूत्रमें 'असंजद-सम्माइट्ठि- ट्ठाणे' यह पद है उसे हटा देना होगा; क्योंकि भाववेदी मनुष्य द्रव्यस्त्री भी हो सकता है उसके अपर्याप्त अवस्थामें चौथा गुणस्थान नहीं बन सकता है। इसी प्रकार ९० वें सूत्रमें जो 'संजद-ट्ठाणे' पद है उसे भी हटा देना होगा। कारण, भाववेदी पुरुष और द्रव्यस्त्रीके संयत गुणस्थान नहीं हो सकता है। इसलिए यह मानना होगा कि उक्त तीनों सूत्र द्रव्यमनुष्यके ही विधायक हैं, भावमनुष्यके नहीं ?

(४) परिहार—पण्डितजीने इस आक्षेप द्वारा जो आपत्तियाँ बतलाई हैं वे यदि गम्भीर विचारके साथ प्रस्तुत की गई होतीं तो पण्डितजी उक्त परिणामपर न पहुँचते। मान लीजिये कि ८९वें सूत्रमें जो 'असंजदसम्माइट्ठि-ट्ठाणे' पद निहित है वह उसमें नहीं है तो जो भाव और द्रव्य दोनोंसे मनुष्य (पुरुष) है उसके अपर्याप्त अवस्थामें चौथा गुणस्थान कौनसे सूत्रसे प्रतिपादित होगा ? इसी प्रकार मान लीजिये कि ९० वें सूत्रमें जो 'संजद-ट्ठाणे' पद है वह उसमें नहीं है तो जो भाववेद और द्रव्यवेद दोनोंसे ही पुरुष है उसके पर्याप्त अवस्थामें १४ गुणस्थानोंका उपपादन कौनसे सूत्रसे करेंगे ? अतएव यह मानना होगा कि ८९वाँ सूत्र उत्कृष्टतासे जो भाव और द्रव्य दोनोंसे ही मनुष्य (पुरुष) है, उसके अपर्याप्त अवस्थामें चौथे गुणस्थान-का प्रतिपादक है और ९० वाँ सूत्र, जो भाववेद और द्रव्यवेद दोनोंसे पुरुष है अथवा केवल द्रव्यवेदसे पुरुष है उसके पर्याप्त अवस्थामें १४ गुणस्थानोंका प्रतिपादक है। ये दोनों सूत्र विषयकी उत्कृष्ट मर्यादा अथवा प्रधानताके प्रतिपादक हैं, यह नहीं भूलना चाहिये और इसलिए प्रस्तुत सूत्रोंको भावप्रकरणके माननेमें जो आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं ठीक नहीं हैं। सर्वत्र 'इष्ट-सम्प्रत्यय' न्यायसे विवेचन एवं प्रतिपादन किया जाता है। साथमें जो विषयकी प्रधानताको लेकर वर्णन हो उसे सब जगह सम्बन्धित नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह कि ८९ वाँ सूत्र भाववेदी मनुष्य द्रव्यस्त्रीकी अपेक्षासे नहीं है, किन्तु भाव और द्रव्य मनुष्यकी अपेक्षासे है। इसी प्रकार ९० वाँ सूत्र भाववेदी पुरुष और द्रव्यवेदी पुरुष तथा गौणरूपसे केवल द्रव्यवेदी पुरुषकी अपेक्षासे है और चूँकि यह सूत्र पर्याप्त अवस्थाका है इसलिए जिस प्रकार पर्याप्त अवस्थामें द्रव्य और भाव पुरुषों तथा स्त्रियोंके चौथा गुणस्थान संभव है उसी प्रकार पर्याप्त अवस्थामें द्रव्यवेदसे तथा भाववेदसे पुरुष और केवल द्रव्यवेदी पुरुषके १४ गुणस्थान इस सूत्रमें वर्णित किये गये हैं।

इस तरह पण्डितजीने द्रव्यप्रकरण सिद्ध करनेके लिए जो भावप्रकरण-मान्यतामें आपत्तियाँ उपस्थित की हैं उनका सयुक्तिक परिहार हो जाता है। अतः पहली युक्ति द्रव्य-प्रकरणको नहीं साधती। और इसलिए ९३वाँ सूत्र द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका विधायक न होकर भावस्त्रियोंके १४ गुणस्थानोंका विधायक है। अतएव ९३वें सूत्रमें 'संजद' पदका विरोध नहीं है।

ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि षट्खण्डागमका प्रस्तुत प्रकरण द्रव्यप्रकरण नहीं है, भावप्रकरण है। अब दूसरी आदि शेष युक्तियोंपर विचार किया जाता है।

२. यद्यपि षट्खण्डागममें अन्यत्र कहीं द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका कथन उपलब्ध नहीं होता, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इस कारण प्रस्तुत ९३ वाँ सूत्र ही द्रव्यस्त्रियोंके गुणस्थानोंका विधायक एवं प्रतिपादक है : क्योंकि उसके लिए स्वतन्त्र ही हेतु और प्रमाणोंकी जरूरत है, जो अब तक प्राप्त नहीं हैं और जो प्राप्त हैं वे निराबाध और सोपपन्न नहीं हैं और विचार कोटिमें हैं—उन्हींपर यहाँ विचार चल रहा है। अतः प्रस्तुत दूसरी युक्ति ९३ वें सूत्रमें 'संजद' पदकी अस्थितिकी स्वतन्त्र साधक प्रमाण नहीं है।

हाँ, विद्वानोंके लिए यह विचारणीय अवश्य है कि षट्खण्डागममें द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थानोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादन क्यों उपलब्ध नहीं होता ? मेरे विचारसे इसके दो समाधान हो सकते हैं और जो बहुत कुछ संगत और ठीक प्रतीत होते हैं। वे निम्न प्रकार हैं :—

(क) जिस कालमें षट्खण्डागमकी रचना हुई है उस कालकी अर्थात्—करीब दो हजार वर्ष पूर्वकी अन्तः साम्प्रदायिक स्थितिको देखना चाहिए। जहाँ तक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण किया जाता है उससे प्रतीत होता है कि उस समय अन्तः साम्प्रदायिक स्थितिका यद्यपि जन्म हो चुका था, परन्तु उसमें पक्ष और तीव्रता नहीं आई थी। कहा जाता है कि भगवान् महावीरके निर्वाणके कुछ ही काल बाद अनुयायी साधुओंमें थोड़ा-थोड़ा मतभेद आरम्भ हो गया था और संघभेद होना प्रारम्भ हो गया था, लेकिन वीर-निर्वाणकी सातवीं सदी तक अर्थात् ईसीकी पहली शताब्दीके प्रारम्भ तक मतभेद और संघभेदमें कट्टरता नहीं आयी थी। अतः कुछ विचार-भेदको छोड़कर प्रायः जैन परम्पराकी एक ही धारा (अचेल) उस वक्त तक बहती चली आ रही थी और इसलिए उस समय षट्खण्डागमके रचयिताको षट्खण्डागममें यह निबद्ध करना या जुदे परके बतलाना आवश्यक न था कि द्रव्यस्त्रियोंके पाँच गुणस्थान होते हैं, उनके छठे आदि नहीं। क्योंकि प्रकट था कि मुक्ति अचेल अवस्थासे होती है और द्रव्यमनुष्यनियाँ अचेल नहीं होतीं—वे सचेल ही रहती हैं। अतएव सुतरां उनके सचेल रहनेके कारण पाँच ही गुणस्थान सुप्रसिद्ध हैं। यही कारण है कि टीकाकार वीरसेन स्वामीने भी यही नतीजा और हेतु-प्रतिपादन उक्त ९३ वें सूत्रकी टीकामें प्रस्तुत किये हैं तथा तत्त्वार्थवार्त्तिक कार अकलङ्कदेव (वि० ८ वीं शती) ने भी बतलाये हैं।

ज्ञात होता है कि वीर-निर्वाणकी सातवीं शताब्दीके पश्चात् कुछ साधुओं द्वारा कालके दुष्प्रभाव आदिसे वस्त्रग्रहणपर जोर दिया जाने लगा था, लेकिन उन्हें इसका समर्थन आगम-वाक्योंसे करना आवश्यक था, क्योंकि उसके बिना बहुजन सम्मत प्रचार असम्भव था। इसके लिये उन्हें एक आगम-वाक्यका संकेत मिल गया वह था साधुओंकी २२ परिषहोंमें आया हुआ 'अचेल' शब्द। इस शब्दके आधारसे अनुदरा कन्या की तरह 'ईषद् चेलः—अचेलः" अल्पचेल अर्थ करके वस्त्रग्रहणका समर्थन किया और उसे आगमसे भी विहित बतलाया। इस समयसे ही वस्तुतः स्पष्ट रूपमें भगवान् महावीरकी अचेल परम्पराकी सर्वथा चेल रहित—दिगम्बर और अल्पचेल—श्वेताम्बर ये दो धारायें बन गयीं प्रतीत होती हैं। यह इस बातसे भी सिद्ध है कि इसी समयके लगभग हुए आचार्य उमास्वामीने भगवान् महावीरकी परम्पराको सर्वथा चेलरहित ही बतलानेके लिए यह जोरदार और स्पष्ट प्रयत्न किया कि 'अचेल' शब्दका अर्थ अल्पचेल नहीं किया जाना चाहिए—उसका तो नग्नता—सर्वथा चेल रहितता ही सीधा-सादा अर्थ करना चाहिए और यह ही भगवान् महावीरकी परम्परा है। इस बातका उन्होंने केवल मौखिक ही कथन नहीं किया, किन्तु अपनी महत्त्वपूर्ण उभय-परम्परा सम्मत सुप्रसिद्ध रचना 'तत्त्वार्थसूत्र' में बाईस परिषहोंके अंतर्गत अचेलपरिषहको, जो अब तक दोनों परम्पराओंके शास्त्रोंमें इसी नामसे ख्यात चली आयी, 'नाग्न्य-परीषह' के नामसे ही उल्लेखित करके लिखित भी कथन किया और अचेल शब्दको भ्रान्तिकारक जानकर छोड़ दिया, क्योंकि उस शब्दकी खींचतान दोनों तरफ होने लगी और उसपरसे अपना इष्ट अर्थ फलित किया जाने लगा। हमारा विचार है कि इस विवाद और भ्रान्तिको मिटानेके लिए ही उन्होंने स्पष्टार्थक और अभ्रान्त अचेलस्थानीय 'नाग्न्य' शब्दका प्रयोग किया। अन्यथा, कोई कारण नहीं कि 'अचेल' शब्दके स्थानमें 'नाग्न्य' शब्दका परिवर्तन किया जाता, जो अब तक नहीं था। अतएव आ० उमास्वामीका यह विशुद्ध प्रयत्न ऐतिहासिकोंके लिए भी इतिहासकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका है। इससे प्रकट है कि आरम्भिक मूल परम्परा अचेल—दिगम्बर रही और स्त्रीके अचेल न होनेके कारण उसके पांच ही गुणस्थान संभव हैं, इससे आगेके छठे आदि नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जान पड़ता है कि साधुओंमें जब वस्त्रग्रहण चल पड़ा तो स्त्रीमुक्तिका भी समर्थन किया जाने लगा, क्योंकि उनकी सचेलता उनकी मुक्तिमें बाधक थी। वस्त्रग्रहणके बाद पुरुष अथवा स्त्री किसीके लिए भी सचेलता बाधक नहीं रही। यही कारण है कि आद्य जैन साहित्यमें स्त्रीमुक्तिका समर्थन अथवा निषेध प्राप्त नहीं होता। अतः सिद्ध है कि सूत्रकारको द्रव्यस्त्रियोंके ५ गुणस्थानोंका बतलाना उस समय आवश्यक ही न था और इसलिए षट्खण्डागममें द्रव्यस्त्रियोंके ५ गुणस्थानोंका विधान अनुपलब्ध है।

(ख) यह पहले कहा जा चुका है कि षट्खण्डागमका समस्त वर्णन भावकी अपेक्षासे है। अतएव उसमें द्रव्यवेद विषयक वर्णन अनुपलब्ध है। अभी हालमें इस लेखको लिखते समय विद्वद्वर्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका 'जैन बोधक' में प्रकाशित लेख पढ़नेको मिला। उसमें उन्होंने 'खुद्दाबंध' के उल्लेखके आधारपर यह बतलाया है कि 'षट्खण्डागम' भरमें समस्त कथन भाववेदकी प्रधानतासे किया गया है। अतएव वहाँ यह प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए कि 'षट्खण्डागम' में द्रव्यस्त्रियोंके लिए गुणस्थान-विधायक सूत्र क्यों नहीं आया? उन्होंने बतलाया है कि "षट्खण्डागमकी रचनाके समय द्रव्यवेद और भाववेद ये वेदके दो भेद ही नहीं थे उस समय तो सिर्फ भाववेद वर्णनमें लिया जाता था। षट्खण्डागमको तो जाने दीजिये जीवकाण्डमें भी द्रव्यस्त्रियोंके ५ गुणस्थानोंका विधान उपलब्ध नहीं होता और इसलिये यह मानना चाहिये कि मूल ग्रंथोंमें भाववेदकी अपेक्षासे ही विवेचन किया जाता रहा, इसलिये मूलग्रंथों अथवा सूत्रग्रन्थोंमें द्रव्यवेदकी अपेक्षा विवेचन नहीं मिलता है। हाँ, चारित्रग्रंथोंमें मिलता है सो वह ठीक ही है। जिन प्रश्नोंका सम्बन्ध मुख्यतया चरणानुयोगसे है उनका समाधान वहीं मिलेगा, करणानुयोगमें नहीं।" पंडितजीका यह सप्रमाण प्रतिपादन युक्तियुक्त है। दूसरी बात यह है कि केवल षट्खण्डागमपरसे ही स्त्रीमुक्ति-निषेधकी दिगम्बर मान्यताको कण्ठतः प्रतिपादित होना आवश्यक हो तो सर्वथा वस्त्रत्याग और कवलाहार-निषेधकी दिगम्बर मान्यताओंको भी उससे कण्ठतः प्रतिपादित होना चाहिए। इसके अलावा, सूत्रोंमें २२ परिषहोंका वर्णन भी दिखाना चाहिए। क्या कारण है कि तत्त्वार्थसूत्रकारकी तरह षट्खण्डागमसूत्रकारने भी उक्त परिषहोंके प्रतिपादक सूत्र क्यों नहीं रचे? इससे जान पड़ता है कि विषय-निरूपणका संकोच-विस्तार सूत्रकारकी दृष्टि या विवेचन शैलीपर निर्भर है। अतः षट्खण्डागममें भाववेद विवक्षित होनेसे द्रव्यस्त्रियोंके गुणस्थानोंका विधान उपलब्ध नहीं होता।

३. तीसरी युक्तिका उत्तर यह है कि 'पर्याप्त' शब्दके प्रयोगसे वहाँ उसका द्रव्य अर्थ बतलाना सर्वथा भूल है। पर्याप्तकर्म जीवविपाकी प्रकृति है और उसके उदय होनेपर जीव पर्याप्तक कहा जाता है। अतः उसका भाव भी अर्थ है। दूसरे, वीरसेन स्वामीके विभिन्न विवेचनों और अकलंकदेवके तत्त्वार्थवार्तिकगत प्रतिपादनसे पर्याप्त मनुष्यनियोंके १४ गुणस्थानोंका निरूपण होनेसे वहाँ 'पर्याप्त' शब्दका अर्थ द्रव्य नहीं लिया जा सकता है और इसलिये 'पज्जतमणुस्सिणी' से द्रव्यस्त्रीका बोध करना महान् सैद्धान्तिक भूल है। मैं इस सम्बन्धमें अपने **"संजदपदके सम्बन्धमें अकलंकदेवका महत्त्वपूर्ण अभिमत"** शीर्षक लेखमें पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ।

४. हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि 'संजद' पदके विरोधमें यह कैसे कहा जाता है कि "वीरसेनस्वामी की टीका उक्त सूत्रमें 'संजद' पदका समर्थन नहीं करती, अन्यथा टीकामें उक्त पदका उल्लेख अवश्य होता।" क्योंकि टीका दिनकर-प्रकाशकी तरह 'संजद' पदका समर्थन करती है। यदि सूत्रमें 'संजद' पद न हो तो टीकागत समस्त शंका-समाधान निराधार प्रतीत होगा। मैं टीकागत उन पद-वाक्यादिकोंको उपस्थित करता हूँ जिनसे 'संजद' पदका अभाव प्रतीत नहीं होता, बल्कि उसका समर्थन स्पष्टतः जाना जाता है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते, इति चेत्, नोत्पद्यन्ते। कुतोऽवसीयते ? अस्मादेवार्षात्। अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृतिः सिद्धचेत्, इति चेत्, न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः। भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्धः, इति चेत्, न तासां भावसंयमोऽस्ति, भावासंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः। कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीति चेत्, न, भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्। भाववेदो वादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दशगुणस्थानानां सम्भव इति चेत्, न, अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात्। गतिस्तु प्रधाना न साऽराद्विनश्यति। वेदविशेषणायां गतौ न तानि सम्भवन्ति, इति चेत्, न, विनष्टेऽपि विशेषणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।"—धवला, १।१। ९३, प्रथम पुस्तक, पृ० ३३२-३३३।

यहाँ सबसे पहले यह शंका उपस्थित की गयी है कि यद्यपि स्त्रियों (द्रव्य और भाव दोनों) में सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होते हैं। लेकिन हुण्डावसर्पिणी (आपवादिक काल) में स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं उत्पन्न होते ? (इस शंकासे यह प्रतीत होता है कि वीरसेन स्वामीके सामने कुछ लोगोंकी हुण्डावसर्पिणी कालमें स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होनेकी मान्यता रही और इसलिए इस शंका द्वारा उनका मत उपस्थित करके उसका उन्होंने निराकरण किया है। इसी प्रकारसे उन्होंने आगे द्रव्यस्त्री-मुक्तिकी मान्यताको भी उपस्थित किया हैं, जो सूत्रकारके सामने नहीं थी और वीरसनके सामने वह प्रचलित हो चुकी थी और जिसका उन्होंने निराकरण किया हैं। हुण्डावसर्पिणी कालका स्वरूप ही यह है कि जिसमें अनहोनी बातें हो जायें, जैसे तीर्थङ्करके पुत्रीका होना, चक्रवर्तीका अपमान होना आदि। और इसलिये उक्त शंकाका उपस्थित होना असम्भव नहीं है।) वीरसेन स्वामी इस शंकाका उत्तर देते हैं कि हुण्डावसर्पिणी कालमें स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते। इसपर प्रश्न हुआ कि इसमें प्रमाण क्या है ? अर्थात् यह कैसे जाना कि हुण्डावसर्पिणीमें स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते ? इसका उत्तर यह दिया गया है कि इसी आगम सूत्रवाक्यसे उक्त बात जानी जाती है। अर्थात् प्रस्तुत ९२, ९३वें सूत्रोंमें पर्याप्त मनुष्यनीके ही चौथा गुणस्थान प्रतिपादित किया है, अपर्याप्त मनुष्यनीके नहीं, इससे साफ जाहिर है कि सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी कालमें द्रव्य और भाव दोनों ही तरहकी स्त्रियोंमें पैदा नहीं होते। अतएव सुतरां सिद्ध है कि हुण्डावसर्पिणीमें भी स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि पैदा नहीं होते।

यहाँ हम यह उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं कि पं० मक्खनलालजी शास्त्रीने टीकोक्त **'स्त्रीषु'** पदका द्रव्यस्त्री अर्थ करके एक और मोटी भूल की है। **'स्त्रीषु'** पदका बिलकुल सीधा सादा अर्थ है और वह है 'स्त्रियोंमें'। वहाँ द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकारकी स्त्रियोंका ग्रहण है। यदि केवल द्रव्यस्त्रियोंका ग्रहण इष्ट होता हो वीरसेन स्वामी अगले **'द्रव्यस्त्रीणां'** पदकी तरह यहाँ भी **'द्रव्यस्त्रीषु'** पदका प्रयोग करते और जिससे सिद्धान्त-विरोध अनिवार्य था, क्योंकि उससे द्रव्यस्त्रियोंमें ही सम्यग्दृष्टियोंके उत्पन्न न होनेकी बात सिद्ध होती, भावस्त्रियोंमें नहीं। किंतु वे ऐसा सिद्धान्त-विरुद्ध असंगत कथन कदापि नहीं कर सकते थे और इसीलिए उन्होंने **'द्रव्यस्त्रीषु'** पदका प्रयोग न करके **'स्त्रीषु'** पदका प्रयोग किया है जो सर्वथा सिद्धान्ताविरुद्ध और संगत है। यह स्मरण रहे कि सिद्धान्तमें भावस्त्रीमुक्ति तो इष्ट है, द्रव्यस्त्रीमुक्ति इष्ट नहीं है। किन्तु सम्यग्दृष्टि-उत्पत्ति-निषेध द्रव्य और भावस्त्री दोनोंमें ही इष्ट है। अतः पंडितजीका यह लिखना कि "९३वें सूत्रमें पर्याप्त अवस्थामें ही जब द्रव्यस्त्रीके चौथा गुणस्थान सूत्रकारने बताया है तब टीकाकारने यह शंका उठाई है कि द्रव्यस्त्री पर्यायमें सम्यग्दृष्टि क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं ? उत्तरमें कहा गया है कि द्रव्यस्त्री पर्यायमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। क्यों नहीं उत्वन्न होते हैं ? इसके लिये आर्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण बतलाया गया है। अर्थात् आगममें ऐसा ही बताया है कि द्रव्यस्त्री पर्यायमें सम्यग्दृष्टि नहीं जाता है।" "यदि ९३वाँ सूत्र भावस्त्रीका विधायक होता तो फिर सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता, यह शंका उठायी ही नहीं जा सकती, क्योंकि भावस्त्रीके तो सम्यग्दर्शन होता ही है। परन्तु द्रव्यस्त्रीके लिए शंका उठाई है। अतः द्रव्यस्त्रीका ही विधायक ९३वाँ सूत्र है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।" बहुत ही स्खलित और भूलोंसे भरा हुआ है। 'संजद' पदके विरोधी क्या उक्त विवेचनसे सहमत हैं? यदि नहीं, तो उन्होंने अन्य लेखोंकी तरह उक्त विवेचनका प्रतिवाद क्यों नहीं किया? हमें आश्चर्य है कि श्री पं० वर्धमानजी जैसे विचारक तटस्थ विद्वान् पक्षमें कैसे बह गये और उनका पोषण करने लगे? पं० मक्खनलालजीकी भूलोंका आधार भावस्त्रीमें सम्यक् दृष्टिकी उत्पत्तिको मानना है जो सर्वथा सिद्धान्तके विरुद्ध है। सम्यग्दृष्टि न द्रव्यस्त्रीमें पैदा होता है और न भावस्त्रीमें, यह हम पहले विस्तारसे सप्रमाण बतला आये हैं। आशा है पंडितजी अपनी भूलका संशोधन कर लेंगे। और तब वे प्रस्तुत ९३वें सूत्रको भावस्त्रीविधायक ही समझेंगे।

दूसरी शंका यह उपस्थित की गयी है कि यदि इसी आर्ष (प्रस्तुत आगमसूत्र) से यह जाना जाता है कि हुण्डावसर्पिणीमें स्त्रियोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते तो इसी आर्ष (प्रस्तुत आगम सूत्र) से द्रव्य-स्त्रियोंकी मुक्ति सिद्ध हो जाय, यह तो जाना जाता है? (शंकाकारके सामने ९३वाँ सूत्र 'संजद' पदसे युक्त है और उसमें द्रव्य अथवा भावका स्पष्ट उल्लेख न होनेसे उसे प्रस्तुत शंका उत्पन्न हुई है। वह समझ रहा है कि ९३वें सूत्रमें 'संजद' पदके होनेसे द्रव्यस्त्रियोंके मोक्ष सिद्ध होता है। यदि सूत्रमें 'संजद' पद न हो, पाँच ही गुणस्थान प्रतिपादित हों तो यह द्रव्यस्त्री मुक्तिविषयक इस प्रकारकी शंका, जो इसी सूत्रपरसे हुई है, कदापि नहीं हो सकती)। इस शंकाका वीरसेन स्वामी उत्तर देते हैं कि यदि ऐसी शंका करो तो वह ठीक नहीं है क्योंकि द्रव्यस्त्रियाँ सवस्त्र होनेसे पंचम अप्रत्याख्यान (संयमासंयम) गुणस्थानमें स्थित हैं और इसलिये उनके संयम नहीं बन सकता है। इस उत्तरसे भी स्पष्ट जाना जाता है कि सूत्रमें यदि पाँच ही गुणस्थानोंका विधान होता तो वीरसेन स्वामी द्रव्यस्त्रीमुक्तिका प्रस्तुत सवस्त्र हेतु द्वारा निराकरण न करते, उसी सूत्रको ही उपस्थित करते तथा उत्तर देते कि द्रव्यस्त्रियोंके मोक्ष नहीं सिद्ध होता, क्योंकि इसी आगमसूत्रसे उसका निषेध है। अर्थात् प्रस्तुत ९३वें सूत्रमें आदिके पाँच ही गुणस्थान द्रव्यस्त्रियोंके बतलाये हैं, छठे आदि नहीं। वीरसेन स्वामीकी यह विशेषता है कि जब तक किसी बातका साधक आगम प्रमाण रहता है, तो पहले वे उसे ही उपस्थित करते हैं, हेतुको नहीं, अथवा उसे पीछे आगमके समर्थनमें करते हैं।

शंकाकार फिर कहता है कि द्रव्यस्त्रियोंके भले ही द्रव्यसंयम न बने, भावसंयम तो उनके सवस्त्र रहनेपर भी बन सकता है, उसका कोई विरोध नहीं है? इसका वे पुनः उत्तर देते हैं कि नहीं, द्रव्यस्त्रियोंके भावासंयम है, भावसंयम नहीं, क्योंकि भावासंयमका अविनाभावी वस्त्रादिका ग्रहण भावासंयमके बिना नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह कि द्रव्यस्त्रियोंके वस्त्रादि ग्रहण होनेसे ही यह प्रतीत होता है कि उनके भाव-संयम भी नहीं है, भावासंयम ही है क्योंकि वह उसका कारण है। वह फिर शंका करता है 'फिर उनमें चउदह गुणस्थान कैसे प्रतिपादित किये हैं? अर्थात् प्रस्तुत सूत्रमें 'संजद' शब्दका प्रयोग क्यों किया है? इसका वीरसेन स्वामी समाधान करते हैं कि नहीं, भावस्त्रीविशिष्ट मनुष्यगतिमें उक्त चउदह गुणस्थानोंका सत्त्व प्रतिपादित किया है। अर्थात् ९३वें सूत्रमें जो 'संजद' शब्द है वह भावस्त्री मनुष्यकी अपेक्षासे है, द्रव्यस्त्री मनुष्यकी अपेक्षासे नहीं। इस शंका-समाधानसे तो बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद है और वह छठेसे चौदह तकके गुणस्थानोंका बोधक है। और इसलिए वीरसेन स्वामीने उसकी उपपत्ति एवं संगति भावस्त्री मनुष्यकी अपेक्षासे बैठाई है, जैसीकि तत्त्वार्थवार्तिककार अकलंकदेवने अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें बैठाई है। यदि उक्त सूत्रमें 'संजद' पद न हो, तो ऐसी न तो शंका उठती और न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रकारसे उसका समाधान होता। दोनोंका रूप भिन्न ही होता। अर्थात् प्रस्तुत सूत्र द्रव्यस्त्रियोंके ही ५ गुणस्थानोंका विधायक हो और उनकी मुक्तिका निषेधक हो तो "**अस्मादेव आर्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धचेत्**" ऐसी शंका कदापि न उठती। बल्कि "**द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः कथं न भवति**" इस प्रकारसे शंका उठती और उस दशामें "**अस्मादेव आर्षाद्**" और "**निर्वृत्तिः सिद्धचेत्**" ये शब्द भूल करके भी प्रयुक्त न किये जाते। अतः इन शब्दोंके प्रयोगसे भी स्पष्ट है कि ९३वें सूत्रमें द्रव्यस्त्रियोंके ५ गुणस्थानोंका विधान न होकर भावस्त्रियोंके १४ गुणस्थानोंका विधान है और वह 'संजद' पदके प्रयोग द्वारा अभिहित है। और यह तो माना ही नहीं जा सकता है कि उपर्युक्त टीकामें चउदह गुणस्थानोंका जो उल्लेख है वह किसी दूसरे प्रकरणके सूत्रसे सम्बद्ध है क्योंकि "**अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धचेत्**" शब्दों द्वारा उसका संबंध प्रकृत सूत्रसे ही है, यह सुदृढ़ है।

शंकाकार फिर शंका उठाता है कि भाववेद तो वादरकषाय (नौवें गुणस्थान) से आगे नहीं है और इसलिये भावस्त्री मनुष्यगतिमें चउदह गुणस्थान सम्भव नहीं हैं? इसका वे उत्तर देते हैं कि "नहीं, यहाँ योगमार्गणा सम्बन्धी गतिप्रकरणमें वेदकी प्रधानता नहीं है किन्तु गतिकी प्रधानता है और वह शीघ्र नष्ट नहीं होती। मनुष्यगतिकर्मका उदय तथा सत्त्व चउदहवें गुणस्थान तक रहता है और इसलिये उसकी अपेक्षा भावस्त्रीके चउदहगुणस्थान उपपन्न हैं। इसपर पुनः शंका उठी कि, "वेदविशिष्ट मनुष्यगतिमें वे चउदह गुणस्थान सम्भव नहीं हैं? इसका समाधान किया कि नहीं, वेदरूप विशेषण यद्यपि (नौवें गुणस्थानमें) नष्ट हो जाता है फिर भी उपचारसे उक्त व्यपदेशको धारण करने वाली मनुष्यगतिमें, जो चउदहवें गुणस्थान तक रहती है, चउदह गुणस्थानोंका सत्त्व विरुद्ध नहीं है।" इस सब शंका-समाधानसे स्पष्ट हो जाता है कि टीका द्वारा ९३वें सूत्रमें 'संजद' पदका निःसंदेह समर्थन है और वह भावस्त्री मनुष्यकी अपेक्षासे है द्रव्यस्त्री मनुष्यकी अपेक्षासे नहीं।

पं० मक्खनलालजी शास्त्रीने टीकागत उल्लिखित स्थलका कुछ आशय और दिया है लेकिन वे यहाँ भी स्खलित हुए हैं। आप लिखते हैं—"अब आगेकी टीकाका आशय समझ लीजिए, आगे यह शंका उठाई है कि इसी आगमसे द्रव्यस्त्रीके मोक्ष सिद्ध होती है क्या? उत्तरमें टीकाकार आचार्य वीरसेन कहते हैं कि नहीं, इसी आगमसे यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यस्त्रीके मोक्ष नहीं हो सकती है।" यहाँ पंडितजी ने "इसी आगमसे द्रव्यस्त्रीके मोक्ष सिद्ध होती है क्या? और इसी आगमसे यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यस्त्रीके मोक्ष सिद्ध नहीं हो सकती है।" लिखा है वह "**अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धचेत् इति चेत् न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः।**" इन वाक्योंका आशय कैसे निकला? इनका सीधा आशय तो यह है कि इसी आगमसूत्रसे द्रव्यस्त्रियोंके मोक्ष सिद्ध हो जाये? इसका उत्तर दिया गया कि 'नहीं, क्योंकि द्रव्यस्त्रियाँ सवस्त्र होनेके कारण पंचम अप्रत्याख्यान गुणस्थानमें स्थित हैं और इसलिये उनके संयम नहीं बन सकता है। परन्तु पंडितजीने 'क्या' तथा 'इसी आगमसे यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यस्त्रीके मोक्ष नहीं हो सकता है।' शब्दोंको जोड़कर शंका और उसका उत्तर दोनों ही सर्वथा बदल दिये हैं। टीकाके उन दोनों वाक्योंमें न तो ऐसी शंका है कि इसी आगमसे द्रव्यस्त्रीके मोक्ष सिद्ध होती है क्या?' और न उसका ऐसा उत्तर है कि 'इसी आगमसे यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यस्त्रीके मोक्ष नहीं हो सकती है।' यदि इसी आगमसूत्रसे द्रव्यस्त्रीके मोक्षका निषेध प्रतिपादित होता तो वीरसेन स्वामी '**सवासस्त्वात्**' हेतु नहीं देते, उसी आगमसूत्रको ही प्रस्तुत करते, जैसाकि सम्यग्दृष्टिकी स्त्रियोंमें उत्पत्तिनिषेधमें उन्होंने आगमको ही प्रस्तुत किया है, हेतुको नहीं। अतएव पंडितजीका यह लिखना भी सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि 'यदि ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद होता तो आचार्य वीरसेन इस प्रकार टीका नहीं करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि इसी आर्षसे द्रव्यस्त्रीके मोक्ष नहीं सिद्ध होती है।' क्योंकि वीरसेन स्वामीने यह कहीं भी नहीं लिखा कि इसी आर्षसे द्रव्यस्त्रीके मोक्ष नहीं सिद्ध होती है।' पंडितजीसे अनुरोध करूँगा कि वे ऐसे गलत आशय कदापि निकालनेकी कृपा न करें।

पंडितजीका यह लिखना भी संगत नहीं है कि वीरसेन स्वामीने 'संयम' पदका अपनी टीकामें थोड़ा भी जिकर नहीं किया। यदि सूत्रमें 'सयम' पद होता तो यहाँ 'संयम' पद दिया गया है वह किस अपेक्षासे है? इससे द्रव्यस्त्रीके संयम सिद्ध हो सकेगा क्या? आदि शंका भी वे अवश्य उठाते और समाधान करते।'

हम पंडितजीसे पूछते हैं कि 'संयम' पदका क्या अर्थ है? यदि छठेसे चउदह तकके गुणस्थानोंका ग्रहण उसका अर्थ है तो उनका टीकामें स्पष्ट तो उल्लेख है। यदि द्रव्यस्त्रियोंके द्रव्यसंयम और भावसंयम दोनों ही नहीं बनते हैं तब उनमें चउदह गुणस्थान कैसे बतलाये? नहीं, भावस्त्री विशिष्ट मनुष्यगतिकी अपेक्षासे इनका सत्त्व बतलाया गया है—"**कथं पुनस्तासु चतुर्दशगुणस्थानानीति चेत्, न भावस्त्रीविशिष्ट-मनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्**"—यह क्या है? आपकी उपर्युक्त शंका और समाधान ही तो है। शंकाकार समझ रहा है कि प्रस्तुत सूत्रमें जो 'संजद' पद है वह द्रव्यस्त्रियोंके लिये आया है और उसके द्वारा छठेसे चउदह तकके गुणस्थान उनके बतलाए गये हैं। वीरसेन स्वामी उसकी इस शंकाका उत्तर देते हैं कि चउदह गुणस्थान भावस्त्रीकी अपेक्षासे बताये गए हैं, द्रव्यस्त्रीकी अपेक्षासे नहीं। इससे साफ है कि सूत्रमें 'संजद' पद दिया हुआ है और वह भावस्त्रीकी अपेक्षासे है।

पण्डितजीने आगे चलकर एक बात और विचित्र लिखी है कि 'प्रस्तुत सूत्रकी टीकामें जो चउदह गुणस्थानों और भाववेद आदिका उल्लेख किया गया है उसका सम्बन्ध इस सूत्रसे नहीं है—अन्य सूत्रोंसे है—इसी सिद्धान्तशास्त्रमें जगह-जगह ९ और १४ गुणस्थान बतलाये गये हैं, किन्तु पण्डितजी यदि गंभीरतासे "**अस्मादेव आर्षाद्**" इत्यादि वाक्यों पर गौर करते तो वे उक्त बात न लिखते। यह एक साधारण विवेकी भी जान सकता है कि यदि दूसरी जगहोंमें उल्लिखित गुणस्थानोंकी संगति यहाँ बैठाई गयी होती तो "**अस्मादेव आर्षाद्**" वाक्य कदापि न लिखा जाता, क्योंकि आपके मतसे प्रस्तुत सूत्रमें उक्त १४ गुणस्थानों या "संजद" पदका उल्लेख नहीं है। जब सूत्रमें "संजद" पद है और उसके द्वारा चउदह गुणस्थानोंका संकेत (निर्देश) है तभी यहाँ द्रव्यस्त्री-मुक्तिविषयक शंका पैदा हुई है और उसका समाधान किया गया है। यद्यपि आलापाधिकार आदिमें पर्याप्त मनुष्यनियोंके चउदह गुणस्थान बतलाये हैं तथापि वहाँ गतिका प्रकरण नहीं है। यहाँ गतिका प्रकरण है और इसलिये उक्त शंका-समाधानका यहीं होना सर्वथा संगत है। अतः ९ और १४ गुणस्थानोंके उल्लेखका संबंध प्रकृत सूत्रसे ही है, अन्य सूत्रोंसे नहीं। अतएव स्पष्ट है कि टीकासे भी ९३ वें सूत्रमें 'संजद' पदका समर्थन होता है और उसकी उसमें चर्चा भी खुले तौर से की गयी है।

(५) अब केवल पाँचवीं युक्ति रह जाती है सो उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ पहली और दूसरी युक्ति की चर्चामें कथन कर आये हैं। हमारा यह भय कि—"इस सूत्रको द्रव्यस्त्रीके गुणस्थानोंका विधायक न माना जायगा तो इस सिद्धान्तग्रन्थसे उनके पाँच गुणस्थानोंके कथनकी दिगम्बर मान्यता सिद्ध न हो सकेगी और जो प्रो० हीरालालजी कह रहे हैं उसका तथा श्वेताम्बर मान्यताका अनुषंग आवेगा।" सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणों, हेतुओं, संगतियों, पुरातत्त्वके अवशेषों, ऐतिहासिक तथ्यों आदिसे सिद्ध है कि द्रव्यस्त्रीका मोक्ष नहीं होता और इसलिये श्वेताम्बर मान्यताका अनुषंग नहीं आ सकता। आज तो दिगम्बर मान्यताके पोषक और समर्थक इतने विपुलरूपमें प्राचीनतम प्रमाण मिल रहे हैं जो शायद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिछली शताब्दियोंमें भी न मिले होंगे। पुरातत्त्वका अबतक जितना अन्वेषण हो सका है और भूगर्भसे उसकी खुदाई हुई है, उन सबमें प्राचीनसे प्राचीन दिगम्बर नग्न पुरुषमूर्तियाँ ही उपलब्ध हुई हैं और जो दो हजार वर्षसे भी पूर्वकी हैं। परन्तु सचेल मूर्ति या स्त्रीमूर्ति, जो जैन निर्ग्रन्थ हो, कहींसे भी प्राप्त नहीं हुई। हाँ, दशवीं शताब्दीके बादकी जरूर कुछ सचेल पुरुषमूर्तियाँ मिलती बतलाई जाती हैं सो उस समय दोनों ही परम्पराओंमें काफी मतभेद हो चुका था तथा खण्डन-मण्डन भी आपसमें चलने लगा था। सच पूछा जाये तो उस समय दोनों ही परम्पराएँ अपनी अपनी प्रगति करनेमें अग्रसर थीं। अतः उस समय यदि सचेल पुरुष-मूर्तियां भी निर्मित कराई गई हों तो आश्चर्य ही नहीं है। दुर्भाग्यसे आज भी हम अलग हैं और अपनेमें अधिकतम दूरी ला रहे हैं और लाते जा रहे हैं। समय आये और हम इस तथ्यको स्वीकार करें, यही अपनी भावना है। और यदि संभव हो तो हम पुनः आपसमें एक हो जावें तथा भगवान् महावीरके अहिंसा और स्याद्वादमय शासनको विश्वव्यापी बनायें।

उपसंहार

उपरोक्त विवेचनके प्रकाशमें निम्न परिणाम सामने आते हैं—

१. षट्खण्डागममें समस्त कथन भावकी अपेक्षासे किया गया है और इसलिये उसमें द्रव्यस्त्रीके गुण-स्थानोंकी चर्चा नहीं आयी।

२. ९३ वें सूत्रमें 'संजद' पदका होना न आगमसे विरुद्ध है और न युक्तिसे। बल्कि न होनेमें इस योगमार्गणा सम्बन्धी मनुष्यनियोंमें १४ गुणस्थानोंके कथनके अभावका प्रसंग, वीरसेन स्वामीके टीकागत 'संजद' पदके समर्थनकी असंगति और तत्त्वार्थवार्त्तिककार अकलंकदेवके पर्याप्त मनुष्यनियोंमें १४ गुणस्थानों-को बतलानेकी असंगति आदि कितने ही अनिवार्य दोष सम्प्राप्त होते हैं।

३. "पर्याप्त" शब्दका द्रव्य अर्थ विवक्षित नहीं है, उसका भाव अर्थ विवक्षित है। पर्याप्तकर्म जीव-विपाकी प्रकृति है और उसके उदय होनेपर ही जीव पर्याप्तक कहा जाता है।

४. पं० मक्खनलालजी शास्त्रीने भावस्त्रीमें सम्यग्दृष्टिके उत्पन्न होनेकी मान्यता प्रकट की है वह स्खलित और सिद्धान्तविरुद्ध है। स्त्रीवेदकी उदय व्युच्छित्ति दूसरे ही गुणस्थानमें हो जाती है और इसलिये अपर्याप्त अवस्थामें भावस्त्रीके चौथा गुणस्थान कदापि संभव नहीं है।

५. वीरसेन स्वामीके "**अस्मादेवार्षाद्**" इत्यादि कथनसे सूत्रमें 'संजद' पदका टीकाद्वारा समर्थन होता है।

६. द्रव्यस्त्रीके गुणस्थानोंका कथन मुख्यतया चरणानुयोगसे सम्बन्ध रखता है और षट्खण्डागम करणानुयोग है, इसलिए उसमें उनके गुणस्थानोंका प्रतिपादन नहीं किया गया है। द्रव्यस्त्रीके मोक्षका निषेध विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणों, हेतुओं, पुरातत्त्वके अवशेषों, ऐतिहासिक तथ्यों आदिसे सिद्ध है और इसलिये षट्-खण्डागममें द्रव्यस्त्रियोंके गुणस्थानोंका विधान न मिलनेसे श्वेताम्बर मान्यताका अनुषंग नहीं आ सकता।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org